प्राणायाम के अभ्यास में सावधानियां : वायु विकृत होने पर खाँसी, श्वास, हिचकी, सिर, कान और आंख में पीड़ा तथा नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः प्राणायाम के अभ्यास में विशेष रूप से सावधानी बरतनी चाहिए। जिस प्रकार हाथी, सिंह आदि हिंसक पशुओं को धीरे–धीरे वश में किया जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से भी धीरे–धीरे प्राणवायु को वश में करना चाहिए। अन्यथा ये अभ्यासी का विनाश कर देते हैं।

3. **प्रत्याहार** : इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर से भागने से रोकना प्रत्याहार कहलाता है।
4. **धारणा** : धारणा के योगी का मन धैर्यवान बनता है।
5. **ध्यान** : धारणा की द्वादस आवृत्ति पर ध्यान का प्रादुर्भाव होता है।
6. **समाधि** : समाधि के द्वारा जीव के शुभ और अशुभ कर्म समाप्त होकर उसे मुक्ति मिल जाती है।

4. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्

परिचय : इस उपनिषद् में ब्रह्मप्राप्ति के उपाय के रूप में अष्टांगयोग का मुख्यरूप से प्रतिपादन त्रिषिखी नामक ब्राह्मण और भगवान आदित्य के मध्य संवाद के द्वारा हुआ है। उपनिषद् के मुख्य विषय ब्रह्म, सृष्टि की उत्पत्ति, जड़–चेतन विश्व की सृष्टि, कर्म एवं ज्ञानयोग, ब्रह्मज्ञान का उपाय अष्टांगयोग, दस यम एवं दस नियम, नाड़ी शोधन, प्राणायाम के विविध प्रकार आदि हैं।

इस उपनिषद् में ब्रह्म जीव रूप को कैसे प्राप्त होता है? के उत्तर में कहा गया है :

अहंकाराभिमनेन जीवः स्याद्धि सदाशिवः स चाविवेकप्रकृतिसंगत्या तत्र मुह्यते।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/16

अर्थात् सदाशिव अर्थात् ब्रह्म जब अहंकार रूप अभिमान से ग्रस्त हो जाता है तब वही जीव की श्रेणी में गमन करने लगता है। जीव पुनः योग मार्ग का अनुशरण कर अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करता है। इस उपनिषद् में योग के दो मार्गों का उल्लेख किया गया हैः

1. ज्ञानयोग 2. कर्मयोग

1. **ज्ञानयोग** : ''चित्त को सर्वथा आत्मिक उत्थान में नियोजित किये रखना ज्ञानयोग कहलाता है।
2. **कर्मयोग** : ''कर्म और कर्तव्य द्वारा शास्त्रों के अनुसार कर्मों में सदैव मन को नियुक्त किये रखना कर्म योग कहलाता है।

यह उपनिषद् दो प्रकार के योगों को विकार रहित भाव से करने कर परामर्श देता है। ऐसा करने से साधक शीघ्र ही मोक्ष रूपी परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है।

अष्टांगयोग : इस उपनिषद् में योग के आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया गया है।

1. **यम : ''देहेन्द्रियेषु वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः''** त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/28

अर्थात् विद्वानों के अनुसार शरीर एवं इन्द्रियों के प्रति सभी प्रकार से वैराग्य भाव ही यम कहलाते हैं। यहां यम के 10 भेद बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. अहिंसा	2. सत्य	3. अस्तेय	4. ब्रह्मचर्य	5. दया
6. आर्जव (सरलता)	7. क्षमा	8. धैर्य	9. स्वल्पाहार	10. षुद्धता

2. **नियम :''अनुरक्तिः परे तत्त्वे सततं नियमः स्मृतः''** त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/29

अर्थात् परमात्म तत्त्व से निरन्तर अनुराग भावना नियम कहलाती है। इसके भी 10 भेद है :

1. तप	2. संतोष	3. आस्तिक भाव	4. दान	5. भगवत् ध्यान
6. वेदान्त श्रवण	7. ह्लीं (लज्जा)	8. मति	9. जप	10. व्रत

3. **आसन : :''सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासनमुत्तमम्'** त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/29

अर्थात् सभी वस्तुओं में उदासीन भावना सर्वश्रेष्ठ आसन है। त्रिषिखब्रह्मण उपनिषद् में 17 आसनों का उल्लेख किया गया हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. स्वास्तिक आसन 2. गोमुखासन 3. वीरासन 4. योगासन 5. पद्मासन 6. बद्धपद्मासन
7. कुक्कुटासन 8. उत्तान कूर्मासन 9. धनुरासन 10. सिंहासन 11. भद्रासन
12. मुक्तासन 13. मयूरासन 14. मत्स्येन्द्रासन 15. सिद्धासन 16. पष्चिमोत्तानासन
17. सुखासन

4. **प्राणायाम : :''जगत्सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः''** त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/30

अतः जगत के मिथ्यात्व को भली भॉति जान लेने को ही प्राणायाम कहा गया।

प्राणायाम की अभ्यास विधि को बताते हुए कहा गया है कि यम–नियम और आसन से सुसंयत होकर नाड़ी शोधन करने के पश्चात् प्राणायाम करना चाहिए। इस उपनिषद् में शरीर की माप को 96 अंगुल शरीर से प्राण 12 अंगुल अधिक बतलाया गया है।

ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के उपाय को बताते हुए इस उपनिषद् में कहा गया है :

देहस्थमनिलं देहसमुद्भूतेन वह्निना। न्यनं समं वा योगेन कुर्वन्ब्रह्मविदिष्यते।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/55

अर्थात् शरीररस्थ वायु को समुद्भूत अग्नि से योग द्वारा न्यून एवं सम करके ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है।

प्राणायाम अभ्यास विधि : सर्व प्रथम आसन को स्थापित कर शरीर को सीधा करके बैठे। नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर दातों को स्पर्श कराते हुए जिह्वा को तालु में स्थापित कर स्वस्थ चित्त और निरायव

भाव से सिर को अकुंचित करते हुए योग मुद्रा में हाथों को करके प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिए। रेचक पूरक और षोधन सम्पन्न करते हुए पुनः रेचक की क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।

प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है : **चतुर्भिः क्लेशनं वायो प्राणायाम उदीर्यते।**

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/95

इस प्रकार उपरोक्त चार विधियों के द्वारा वायु को गतिशील करना प्राणायाम कहलाता है। दाहिने हाथ के द्वारा नासिका को बन्द कर पिंगला नासिका से रेचक करें तदोपरांत 16 मात्रा तक इड़ा नाड़ी से पूरक करके 64 मात्रा तक कुम्भक और 32 मात्रा तक वायु को पिंगला से रेचक करें।

इस प्रकार क्रम और विपरीत क्रम से बार–बार और शरीरस्थ वायु को कुम्भ की भॉति स्थिर करके रखें। इस प्रकार के अभ्यास से समस्त नाड़िया वायु से परिपूर्ण होकर उसमें दसों प्राण सुचारू रूप से चलने लगते हैं। इस प्रकार के निरन्तर क्रम से हृदय रूपी कमल विकसित होकर स्वच्छ और स्पष्ट हो जाता है और उसके स्थान पर परमात्म स्वरूप निष्पाप वासुदेव के दर्शन का लाभ प्राप्त होता है।

इस उपनिषद् के अनुसार प्रातः, मध्यान्ह, सांय और अर्ध रात्रि चार बार कुम्भक का अभ्यास करते हुए धीरे–धीरे क्रमशः 80 मात्रा तक अवधि को बढ़ाना चाहिए। उपरोक्त विधि से अभ्यास करने से एक दिन में ही सभी प्रकार के पापों को विनाश हो जाता है और तीन मास तक नियमित प्राणायाम का अभ्यास करने से योग सिद्ध हो जाता है। ऐसा साधक वायु को जीतने एवं इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला, स्वल्पाहारी, कम निद्रा लेने वाला, तेजमय एवं बलवान होता है। साधक आकाल मृत्यु के भय से मुक्त दीर्घायु को प्राप्त होता है।

प्राणायाम के तीन स्तर अधम, मध्यम् और उत्तम बताये गये हैं, जिनके लक्षण क्रमशः पसीना आना, शरीर में कपकपी होना और उर्ध्वगामी होना हैं। जो साधक पूरक और रेचक से रहित मात्र कुम्भक करने में तत्पर हो जाता है, उसे तीनों कालों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

5. प्रत्याहार :

स्थानात्स्थानं समाकृष्य प्रत्याहारः स उच्यते। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/130

अर्थात् 'एक स्थल से दूसरे स्थल को खींचना प्रत्याहार कहलाता है।''

इस प्रकार यह उपनिषद् प्रत्याहार के अभ्यास में 18 मर्म स्थलों पर परमात्म चेतना के खींचने प्रक्रिया का परामर्श दिया गया है। ये 18 मर्म स्थल इस प्रकार है : 1. पैर का अँगूठा 2. एड़ी 3. जाँघ का मध्य भाग 4. उरु का मध्य भाग 5. गूदा का मूल भाग 6. हृदय 7. उपस्थ 8. नाभि 9. कण्ठ 10. कोहनी 11. तालू 12.

नासिका 13. आँख का मण्डल 14. भौहों का मध्य भाग 15. ललाट 16. मस्तक का मूल भाग 17. घुटने का मूल भाग 18. हाथों का मूल भाग।

6. **धारणा** :

मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/134

अतः यमादि के द्वारा मन को धारण करना धारणा कहलाता है। इसके द्वारा मनुष्य संसार सागर रूपी समुद्र को पार करने में सक्षम हो जाता है। इस उपनिषद् में शरीर में पंचतत्वों के स्थान का भी वर्णन किया गया है।'' जो इस प्रकार है :

पृथ्वी तत्व : पैरों से लेकर घुटनों तक का स्थान।

जल तत्व : घुटनों से लेकर कमर तक का भाग।

अग्नि तत्व : कटि प्रदेश के मध्य में।

वायु : नाभि से नासिका तक का भाग।

आकाष तत्व : नासिका के ब्रह्मरन्ध्र तक का भाग।

7. **ध्यान** : योगासन पर आरूढ़ होकर हृदय क्षेत्र में हृदय की विशेष आकृति की चिन्तन करते हुए शरीर को स्थिर कर दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर कर फिर जिह्वा को तालु से स्पर्श करके दातों से स्पर्श कराते हुए काया को ऊँचा करके समाहित होकर बैठे। तथा आत्मबुद्धि द्वारा इन्द्रियों का संयमन करके पारब्रह्म परमात्मा के वासुदेव स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

8. **समाधि** :

जीवात्मनः परस्यापि यद्येवमुभयोरपि। अहमेव परंब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः। ब्रह्म संपद्यते योगी न भूयः संसृतिं व्रजेत्।।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 1/2/161–162

जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पष्चात् 'मैं ब्रह्म हूँ' इस अवस्था तक पहुँच जाना ही समाधि कहलाती है। इस अवस्था में सभी प्रकार की वृत्तियों और इच्छाओं का समापन हो जाता है। पारब्रह्म को प्राप्त योगी पुनः इस नष्वर जगत में नहीं आता है।

5. योगतत्त्वोपनिषद्

योगतत्त्वोपनिषद् में योग विषय के विविध उपादानों का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। इस उपनिषद् में पितामह ब्रह्म के प्रति भगवान विष्णु ने योग विषय के गूढ़ तत्वों का निरूपण किया है। भगवान विष्णु द्वारा